RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

200वीं महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती 1824-2024

वर्ष: 49, अंक : 50 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 12 मार्च , 2023

विक्रमी सम्वत् 2079, सृष्टि सम्वत् 1960853123

दयानन्दाब्द : 199 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–49, अंक : 50, 9-12 मार्च 2023 तदनुसार 28 फाल्गुण, सम्वत् 2079 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

श्री सुदर्शन शर्मा गुरुकुल कांगडी सम् विश्वविद्यालय के कुलाधिपति मनोनीत

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) के यशस्वी प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी को गुरुकुल कांगडी सम-विश्वविद्यालय हरिद्वार का कुलाधिपति मनोनीत किया गया है। गुरुकुल कांगडी सम-विश्वविद्यालय की तीनों प्रायोजक संस्थाओं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा एवं दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधानों की संयुक्त बैठक दिनांक 3 मार्च 2023 को आयोजित की जिसमें सर्वसम्मति से श्री सुदर्शन शर्मा जी को कुलाधिपति मनोनीत किया। श्री सुदर्शन शर्मा जी के मनोनयन से आर्य जगत में खुशी की लहर दौड़ गई है।

श्री सुदर्शन शर्मा जी कुलाधिपति गुरुकुल कांगडी सम-विश्वविद्यालय

बैठक के प्रारम्भ में आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के माननीय प्रधान श्री राधाकृष्ण आर्य जी ने बताया कि गुरुकुल कांगडी सम-विश्वविद्यालय हरिद्वार में कुलाधिपति का पद रिक्त चल रहा है क्योंकि पूर्व चांसलर श्री सत्यपाल सिंह को पदमुक्त कर दिया गया था। अत: इसकी आवश्यकता अनुभव करते हुये तीनों प्रायोजक संस्थाओं ने गुरुकुल कांगडी सम-विश्वविद्यालय के नये कुलाधिपति के चयन हेतु ऑन लाईन बैठक आयोजित की गई। श्री धर्मपाल आर्य प्रधान दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा की संस्तुति पर गुरुकुल कांगडी सम-विश्वविद्यालय के कुलसचिव के उपेक्षापूर्ण, निराशाजनक व्यवहार को देखते हुये प्रायोजक संस्थाओं ने बैठक आयोजित करने का निश्चय किया। श्री धर्मपाल आर्य जी ने गुरुकुल कांगडी सम-विश्वविद्यालय हरिद्वार के नये कुलाधिपति के रूप में श्री सुदर्शन शर्मा जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का नाम प्रस्तुत किया जिसके उपरान्त श्री राधाकृष्ण आर्य प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा ने इनके नाम का समर्थन किया। इस प्रकार गुरुकुल कांगडी सम-विश्वविद्यालय की प्रायोजक तीनों संस्थाओं के प्रधानों ने सर्वसम्मति से नियमानुसार कुलाधिपति के रूप में श्री सुदर्शन शर्मा जी का चयन किया। आर्य जगत को उम्मीद है कि उनके कार्यकाल में स्वामी श्रद्धानंद जी की तपस्थली गुरुकुल कांगडी सम् विश्वविद्यालय उन्नति के पथ पर अग्रसर रहेगा और शिक्षा के क्षेत्र में नये आयाम स्थापित करेगा। इससे पहले भी श्री सुदर्शन शर्मा जी 2002 से लेकर 2012 तक गुरुकुल कांगडी सम् विश्वविद्यालय हरिद्वार के चांसलर रह चुके हैं। पं. हरबंसलाल शर्मा जी द्वारा स्थापित विजय साईकिल के नाम से शुरू किया गया व्यवसाय आज श्री सुदर्शन शर्मा जी एवं उनके परिवार के दृढ़ परिश्रम और लग्न से एच.आर. इंटरनैशनल ग्रुप के रूप में देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी अपनी पहचान स्थापित कर चुका है। आज भी यह परिवार समाजसेवी संस्थाओं के लिए दिल खोलकर दान देता है। जहां कहीं भी कोई प्राकृतिक आपदा आती है वहां अपने पिता पूज्य श्री हरबंस लाल शर्मा जी का अनुसरण करते हुए इनका परिवार अपनी आहुति अवश्य डालता है। श्री सुदर्शन शर्मा जी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान पद पर रहते हुए अपने पिता के कार्यों और यश को आगे बढ़ा रहे हैं। उनके नेतृत्व में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब निरन्तर आगे बढ़ रही है। निस्वार्थ भाव से सेवा करना श्री सुदर्शन शर्मा जी अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

अथर्ववेद पढ़ो-आनन्दित रहो

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, (राजस्थान)

चारों वेदों में अथर्ववेद का विशेष महत्व है। यह इस बात से सिद्ध होता है कि किसी भी यज्ञ में ब्रह्मा पद का निर्वहन अथर्ववेद के विद्वान् के लिए ही आरक्षित है। अथर्ववेद में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में कल्पनातीत ऊँचाइयों को छुआ है। विज्ञान की हर शाखा पर अथर्ववेद में गहन चिंतन हुआ है। राजनीति शास्त्र तथा समाज शास्त्र पर तो उसका काम अद्वितीय ही है। दर्शन के क्षेत्र में भी उसका चिन्तन अनूठा है। मनुष्य के जीवन को श्रेष्ठतम बनाने का सच्चा व सरल मार्ग अथर्ववेद ही दिखाता है।

इस लेख में हम अथर्ववेद से ही आनन्द प्राप्ति पर विचार कर रहे हैं। अथर्ववेद का कहना है कि आनन्द प्राप्ति के लिए मनुष्य को सदैव विद्वानों के सम्पर्क में रहकर सदाचारी बनना चाहिए। यह मार्ग तो हमें मोक्ष तक पहुँचा देगा।

एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेषधिमाहाज्जातवेदाः।
अन्वा गन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन।।
अथर्व. 6.123.1

अर्थ-(सधस्थाः) हे साथ बैठने वाले सज्जनों (वः) तुम्हारे लिए (एतम्) इस (शेषधिम्) सुख नीधि परमेश्वर को (परिददामि) सब प्रकार से देता हूँ (उपदेश करता हूँ) (यम्) जिस परमेश्वर को (जातवेदाः) वैज्ञानिक व वेदार्थ करने वाला पुरूष (आवहात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे और (जिसके द्वारा) (यजमानः) ईश्वर पूजक (स्वस्ति) कल्याण (अन्वागन्ता) लगातार प्राप्त करेगा (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश मैं वर्तमान (तम्) उस परमेश्वर को तुम (स्म) अवश्य (जानीत) जानो।

आनन्द प्राप्ति के लिए आनन्द स्वरूप परमात्मा को जानना आवश्यक है। इसीलिए अथर्ववेद कहता है कि-

जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमंत्र।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै।।
अथर्व. 6.123.2

हे साथ बैठने वाले विद्वानों। परम उत्तम आकाश में वर्तमान इस परमात्मा को अवश्य जानो। जिसके द्वारा परमेश्वर का उपासक निरन्तर कल्याण का आनन्द प्राप्त करेगा। यज्ञ वेदाध्ययन अन्नदान आदि शुभकर्म को इस परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अवश्य प्रकाशित करो।

आनन्द प्राप्त करने का यह भी एक तरीका है कि व्यक्ति नियमित जीवन व्यतीत करे। पुरूषार्थ करके स्वयं भी आनन्द प्राप्त करे तथा परोपकार कर दूसरों को भी आनन्द देवें।

उद्गातां भगवती विचृतौ नाम तारके।
मेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम्।।अथर्व. 6.121.3

अर्थ-(भगवति-त्यौ) दो ऐश्वर्य वाले (विचृतौ) अन्धकार से छुड़ाने वाले (नाम) प्रसिद्ध (तारके) तारे (सूर्य और चन्द्रमा) (उद्गाताम्) उदय हुए है। वे दोनों (इह) यहाँ पर (अमृतस्य) मरण से रक्षा का (प्रयच्छताम्) दान करे तब (बद्धकमोचम्) आत्मा की मुक्ति (प्रएतु) हो जावे।

भावार्थ-मनुष्य निरन्तर सूर्य और चन्द्रमा के समान ज्ञान का प्रचार-प्रसार करे तथा सदाचार के नियमों का पालन करता रहे। इससे उसे भी असीम आनन्द की प्राप्ति होगी।

वि जिहीष्व लोकं बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम्।
योन्या इव प्रच्युतोगर्भः पथः सर्वां अनुक्षिय।।अथर्व. 6.121.4

अर्थ-(हे पुरूष) (वि जिहीष्व) विचित्र प्रकार से चल (लोकम्) समाज को (कृणु) बना (बद्धकम्) बड़े बन्धन को (बन्धात्) बन्ध से (मुञ्चासि) तू छुड़ा दे (योन्याः) गर्भाश्य से (प्रच्युतः) बाहर निकले हुए (गर्भ इव) बालक के समान (सर्वान्) सब (पथः) मार्गों की ओर (क्षिय) चल।

भावार्थ-मनुष्यों को विविध प्रकार से समाज को संगठित करना चाहिए। उसे प्रयत्न करना चाहिए कि आत्मा जन्म-मरण के चक्कर से छूट जावे।

मनुष्य को अपने समस्त कर्मों से ईश्वर के प्रति समर्पण करके आनन्द भोगना चाहिए।

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्व कर्मन् प्रथमजा ऋतस्य।
अस्मामिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम।।
अथर्व. 6.122.1

अर्थ-(प्रथमजा) श्रेष्ठों में प्रसिद्ध (विद्वान्) विद्वान से (ऋतस्य) सत्य धर्म के (एतम्) इस (भागम्) सेवनीय व्यवहार को (विश्वकर्मन्) जगत् के रचने वाले परमेश्वर में (परिददामि) मैं समर्पण करता हूँ (जरसः) बुढ़ापे से (परस्तात्) दूर देश में (अस्माभि दत्तन्) अपने दिए हुए (अच्छिरन्नम्) बिना टूटे (तन्तुम् अनु) फैले हुए परब्रह्म के पीछे पीछे (सम्) यथावत् (तरेम) हम पार करें।

भावार्थ-परम श्रेष्ठ विद्वान् द्वारा बताये गये सत्य धर्म के आचरण को मैं परमात्मा के प्रति समर्पित करता हूँ। हम सर्वव्यापक परमात्मा का अनुकरण करके तत्वज्ञान प्राप्त करके संसार सागर को पार करे।

जो मनुष्य परमात्मा की आज्ञा का पालन करके सुपात्रों का सम्मान करता है वह विशेष सुख प्राप्त करता है।

ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन।
अबन्धवेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव।।
अथर्व. 6.122.2

अर्थ-जिन लोगों का पितरों का प्रियदान यथा शास्त्र होता है वे कोई फैले हुए वस्त्र में सूत के समान सर्वव्यापक ब्रह्म के पीछे-पीछे तैरते हैं। कोई-कोई अनाथों को दान देते हुए और सौंपते हुए रहते हैं जो दान करने का अवश्य ही समर्थ हो वही उनका स्वर्ग है।

भावार्थ-जो मनुष्य अपने पूर्वजों के प्रिय विषय दान का शास्त्र के अनुसार पालन करते हैं सर्वव्यापक ब्रह्म का अनुगमन करते हैं और अनाथों को दान देकर उनका पालन करते हैं, जो दान देने में समर्थ है उनके लिए दान देते रहना ही स्वर्ग समान आनन्ददायक है।

अन्वारभेथामनुसंर भेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रये थाम्।।
अथर्व. 6.122.3

अर्थ-हे स्त्री-पुरुषों। सत्कर्म को निरन्तर आरम्भ करो, मिलकर आरम्भ करते रहो। श्रद्धावान लोग इस स्वर्ग लोक को निरन्तर सेवन करते हैं। अग्नि में पका हुआ अन्न तुम्हारे लिए उपस्थित है, उसकी रक्षा के लिए तुम दोनों परस्पर आश्रय लो।

भावार्थ-सब स्त्री-पुरुष गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए तथा परमात्मा में श्रद्धा रखते हुए आनन्द का उपभोग करे, और सदा सुखी रहे।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर आनन्द भोगने का अधिकार स्त्री-पुरूष दोनों को है।

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिय, इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरूत्वान्त्स ददातु तन्मे।।अथर्व. 6.122.5

अर्थ-(शुद्धाः) शुद्ध स्वभाव वाली (पूताः) पवित्र आचरण वाली (यज्ञियाः) पूज्य (इमाः) इन (योषितः) सेवा योग्य स्त्रियों को (ब्रह्मणां) ब्रह्मज्ञानी पुरुषों के (हस्तेषु) हाथों के बीच (प्रपृथक्) नाना प्रकार से (सादयामि) मैं बैठाता हूँ (हे विद्वान् स्त्री पुरूष) (यत्काम्) जिस उत्तम कामना वाला (अहम्) मैं (इदम्) इस समय (वः) तुम्हारा (अभिषिञ्चामि) अभिषेक करता हूँ (सः) वह (मरूत्वान्) दोष नाशक गुणों वाला इन्द्र सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (तत्०) वह वस्तु (मे) मुझे (ददातु) देवे।

देवाः पितरः पितरो देवाः।
यो अस्मि सो अस्मि।।
अथर्व. 6.123.3

अर्थ-(देवाः) विद्वान् लोग (पितरः) माननीय और (पितरः) पालक लोग (देवाः) विजयी होते हैं। मैं (यः) उद्योगी (अस्मि) हूँ, मैं ही (सः) दुःख मिटाने वाला (अस्मि) हूँ।

भावार्थ-विद्वान् लोग परस्पर मिलकर विजय प्राप्त करते हैं उद्योग द्वारा ही वे दुःखों को मिटा देते हैं। अब एक मंत्र और देकर विषय को समाप्त करते हैं।

नाकं राजन् प्रतितिष्ठ तत्रैतत् प्रतितिष्ठतु।
विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देवं सुमना भव।।अथर्व. 6.123.5

अर्थ-हे समर्थ पुरूष। सुख स्वरूप परमात्मा में प्रतिष्ठा पा, उस परमात्मा में ही यह तेरा पुण्य कर्म प्रतिष्ठा पावे। हे राजन्। हमारे लिए अन्नदान आदि पुण्य कर्म का ज्ञान कर। वह तू हे गतिशील। प्रसन्नचित्त हो।

भावार्थ-मनुष्य अपने सब पुण्य कर्म परमात्मा में समर्पण कर पुण्य कर्म करता हुआ आनन्द में रहे।

सम्पादकीय

धर्म का त्याग ही संसार में अशान्ति का बड़ा कारण

मनु महाराज ने धर्म के दस लक्ष्ण गिनाए हैं:-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षमणम्।।

(मनुस्मृति ६.९२)

अर्थात् धृति (धैर्य), क्षमा (अपना अपकार करने वाले का भी उपकार करना), दम (हमेशा संयम से धर्म में लगे रहना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (भीतर और बाहर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को हमेशा धर्माचरण में लगाना),धी (सत्कर्मों)से बुद्धि को बढ़ाना, विद्या (यथार्थ ज्ञान लेना), सत्यम् (हमेशा सत्य का आचरण करना) और अक्रोध (क्रोध को छोड़ कर हमेशा शांत रहना)। यही धर्म के दस लक्षण हैं। जो देश इन दस लक्षणों पर चलेगा वह हमेशा शान्ति का प्रतीक बना रहेगा। भगवान मनु ने कहा है कि शरीर जल से शुद्ध होता है, मन सत्यविचार सत्याचरण से, बुद्धि ज्ञान से तथा आत्मा विद्या और तप से शुद्ध होता है। इसे हमें इस प्रकार समझना चाहिए कि हमारे चार स्थानों को चार वस्तुओं की आवश्यकता होती है। शरीर के लिए अर्थ की क्योंकि भोजन के बिना शरीर की स्थिति नहीं है। मन के लिए काम, बुद्धि के लिए धर्म और आत्मा के लिए मोक्ष की आवश्यकता होती है। धर्म को छोड़कर यदि अर्थ और काम की प्राप्ति होती है तो मनुष्य स्वार्थी और कामी बन जाता है। जब तक बुद्धि अपनी धर्म की आवश्यकता को पूर्ण करके शरीर और मन की आवश्यकताओं का आश्रय नहीं लेगी, तब तक मन निस्वार्थ और निष्कामता की पवित्रता को ग्रहण नहीं कर सकता, उस दशा में आत्मा को मोक्ष का मार्ग सूझता ही नहीं। इन सबको उचित प्रकार से संचालन करने वाला धर्म है जिसकी आवश्यकता सबसे मुख्य है। धर्म की विवेचना बड़ी गहन है किन्तु मनु महाराज के एक वाक्य में कहा है कि **आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्** अर्थात् जिस बात को तू अपने लिए पसन्द नहीं करता, उसे दूसरे के साथ मत कर। कोई मनुष्य पसन्द नहीं करता कि उसकी वस्तु कोई दूसरा व्यक्ति उठा ले जाए। कोई भी व्यक्ति अपने बच्चे को दूसरे के हाथ से मारा जाता हुआ देखकर प्रसन्न नहीं होगा। कुवचन, अन्याय, विश्वासघात, छल, कपट कोई भी व्यक्ति अपने लिए पसन्द नहीं करता तो प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक हो गया है कि दूसरे की वस्तु का अपहरण करना, अन्य प्राणी का हनन करना, दूसरे से कुवाक्य, अन्याय, विश्वासघात, छल, कपट का व्यवहार कभी न करे। तभी जीवन से अशान्ति दूर होगी और दुःख का लेश भी दिखाई न देगा। इसलिए यतोऽभ्युदयनिः श्रेयः सिद्धिः सः धर्मः अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्यों का उत्थान हो और कल्याण की प्राप्ति हो वही धर्म है। यह धर्म की वैज्ञानिक और सार्वभौम परिभाषा है।

जब मनुष्य अपनी वस्तु के चुराए जाने पर दुख और दूसरे की वस्तु चुराने में हर्ष और उत्सुकता प्रकट करेगा। स्वयं कड़वा वचन भी न सुनेगा, अन्य को कुवाक्य कहने तथा अपमानित करने में आनन्द अनुभव करेगा। परनारी को कुदृष्टि से देखना, विश्वासघात, छल कपट, दूसरों को पीड़ा देना आदि कार्यों से नहीं ड़रेगा तो संसार में उसी प्रकार अशान्ति, कलह, दुःख बढ़ते जाएंगे और मनुष्य पतित होते चले जाएंगे। बुद्धि के साथ धर्म के न होने से जो कुछ भी कर्म शरीर और मन से होगा उससे मनुष्य स्वार्थी और कामी बनता जाएगा। स्वार्थी और कामी मनुष्य के साथ कभी दैवी संपत् संगृहीत नहीं हो सकती। इस कारण आत्मा कभी मोक्ष की ओर प्रगति कभी नहीं करेगा।

शास्त्र में कहा गया है कि **धर्मो रक्षति रक्षितः** अर्थात् मनुष्य धर्म को त्याग देता है तो धर्म उसे नष्ट कर देता है और यदि धर्म की रक्षा करता है तो धर्म उसकी रक्षा करता है। ठीक जिस प्रकार मनुष्य वस्त्रों को मैला कर लेगा तो वस्त्र उसे मैला गन्दा बना देता है और जो वस्त्रों को साफ करके पहनता है वस्त्र उसे साफ बना देते हैं। आज प्रायः देखा जाता है कि निर्धन, पददलित, अधिकारवंचित, श्रमजीवी आदि छोटी और मध्यम श्रेणी के लोग ही दुःखी नहीं हैं किन्तु धनी, पदाधिकृत, शासक आदि उच्च से उच्च व्यक्ति भी शान्ति की अनुभूति नहीं कर रहा है। अधिकार, धन, शासन आदि के गौरव को प्राप्त करके भी अशान्त और दुःखी है। इसका एकमात्र कारण यह है कि चारों ओर से लूट खसूट, रिश्वत, चोरबाजारी और विश्वासघात है, छल-प्रपञ्च है, धनी दूसरों का शोषण कर रहा है। जिसके हाथ में अधिकार है वह दूसरों को अन्याय से पीड़ित कर रहा है। परस्पर में विश्वास नहीं, थोड़े से मतभेद के कारण मानवता को छोडकर नृशंस हत्या करने को उद्यत हो जाता है। जब दूसरी ओर से उसके साथ यही व्यवहार होता है तो वह अधर्म अत्याचार कहकर शोर मचाता है और धर्म की दुहाई देता है। किन्तु दूसरे के साथ अनुचित व्यवहार करने वाले व्यक्ति ने कभी सोचा भी नहीं कि इसे भी इतना ही कष्ट पहुँच रहा होगा, जितना किसी अन्य व्यक्ति के बुरे व्यवहार ने मुझे पहुँचाया है।

जब धर्म की भावना दूर हो जाती है तो स्वार्थी और कामी बनकर मनुष्य जो कुछ भी करता है उसमें किसी का भला बुरा नहीं देखता। स्वार्थी दोषं न पश्यति के अनुसार वह धर्माधर्म के विवेचन से दूर होकर बुराईयों से बच ही नहीं सकता। ऐसा मनुष्य देखने में तो मानव प्रतीत होता है किन्तु उसका संचालन जिस आत्मा के द्वारा हो रहा है, वह दानवीय भावनाओं से भरा हुआ है। ऐसे लोगों की वृद्धि ने ही संसार से शान्ति को मिटाकर सर्वत्र अशान्त वातावरण उत्पन्न कर दिया है। आसुरी भावनाओं से भरा व्यक्ति कौन सा पाप नहीं कर सकता। आज से पाँच सहस्र वर्ष पूर्व महर्षि व्यास ने चिल्ला कर कहा-

ऊर्ध्वबाहु विरौम्येष न हि कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते।।

अर्थात् मैं भुजा उठाकर चिल्ला रहा हूँ परन्तु कोई नहीं सुनता और जिस धर्म के द्वारा अर्थ काम की भली प्रकार से प्राप्ति होती है उस धर्म का पालन कोई नहीं करता। इसी कारण से मनुष्य के चरित्र के स्तर में धर्म का सर्वथा अभाव हो गया है, केवल अर्थ और काम रह गये जो अनेक अनर्थों की सृष्टि कर रहे हैं। दर्शनकार ने ठीक कहा है-उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत् सिद्धिरितरथाऽन्ध परम्परा, अर्थात् जहाँ धर्मोपदेशक ठीक होते हैं और सुनने वाले भी ठीक होते हैं वहीं धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि होती है। जहां सुनने सुनाने और आचरण का अभाव होता है वहाँ अन्ध परम्परा चल पड़ती है, पापाचार फैल जाते हैं। पापान्धकार में लोगों को सन्मार्ग दिखाई नहीं देता है। बस मनुष्य में नैतिकता का संचार करना ही धर्म का वास्तविक उद्देश्य है, किन्तु भोगवाद और प्रकृतिवाद ने मनुष्य को इतना अन्धा बना दिया है कि वह धर्म और ईश्वर नाम की किसी वस्तु को देखना नहीं चाहता। हमारे विचार में इस्लाम, ईसाइयत एवं हिन्दुओं में प्रचलित रूढ़िवादियों को ही लोग धर्म समझते हैं और उन रूढिवादों का नियामक और संचालक ईश्वर को मानते हैं। इस प्रकार धर्म और ईश्वर संसार में अज्ञानी लोगों के लिए झगडे के मूल कारण हैं। इसी तरह धर्म और ईश्वर को सब जगह से निकाला जा रहा है। किन्तु धर्म वह वस्तु है जो संसार को शांति देता है और लोगों को ऊँचा उठाता है। आचारप्रभवो धर्मः धर्मस्य प्रभुरच्युतः अर्थात् ऊँचे आचार का नाम धर्म है और उस धर्म के स्वामी का नाम ईश्वर है। धर्म और ईश्वर के इस व्यापक लक्षण को समझे बिना लोग इसका विरोध करते हैं। यह विरोध संसार में अनाचार और अशान्ति का हेतु है। क्योंकि सच्चे धर्म की शिक्षा के अभाव में विज्ञान की उच्च पढाई, साहित्य और इतिहास की बहुत सी परीक्षाएं भी मनुष्य को चरित्रवान नहीं बना सकती। जीवन के सभी क्षेत्रों में नैतिकता आवश्यक है जो मानवता उत्पन्न कर सके। इसका एकमात्र साधन धर्म है जिससे देश के चरित्र का स्तर ऊँचा हो सकता है। ऐसे व्यापक और सार्वभौम धर्म का सन्देश सुनाने के लिए वेद का मार्ग ही सफल मार्ग हो सकता है।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

वैदिक सृष्टि उत्पत्ति की विशेषता

ले.-श्री पं० जगदीशचन्द्र जी शास्त्री

ऋग्वेद के अन्तिम भाग में तत्वज्ञान की पराकाष्ठा का जो साक्षात्कार प्राचीन ऋषि महर्षियों को होता रहता है और आज के पाश्चात्य विद्वानों को भी समयानुसार होने लग रहा है-उसी ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों के प्रकाश में हम सृष्टि उत्पत्ति के विषय में विचार प्रारम्भ करते हैं।

संसार में सर्वत्र यह नियम पाया जाता है कि जब कभी किसी वस्तु की आवश्यकता अनुभव होती है, तो सबसे प्रथम उसके कारणों की खोज की जाती है; क्योंकि कारण का कार्य के साथ अटूट सम्बन्ध विद्यमान होता है। वैशेषिक शास्त्र के शब्दों में 'कारणाभावात् कार्याभाव:' अर्थात् कारण के न होने से कार्य की सत्ता उपलब्ध नहीं हो सकती। अत: सृष्टि की उत्पत्ति का कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिये।

कारण की खोज

प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ के तीन कारण अवश्य होते हैं। उपादान कारण-जिस से वह पदार्थ उत्पन्न हो, जैसे मृत्तिका से घड़ा उत्पन्न होता है। निमित्त कारण-जिस चेतन कर्त्ता के द्वारा कार्य की उत्पत्ति हो, जैसे घड़े को बनाने वाला कुम्भकार। तीसरा साधारण कारण-जिसके उद्देश्य से कार्य की उत्पत्ति हो, जैसे ग्राहकों के लिए घट का निर्माण।

सृष्टि के भी तीन कारण हैं। वेद ने कारण की खोज का कई स्थानों पर वर्णन किया है। एक स्थान पर कहा है कि-

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षु:।
मनीषिणो मनसा पृच्छुतेदु तत् यदध्यतिष्ठत् भुवनानि धारयन्।। ऋ० १०।८१।४

वह कौन सा वन और कौन सा महान् वृक्ष था, जिसमें से ये द्युलोक के नक्षत्र और विशाल पृथिवीलोक बनाये गये। हे विचारशील विद्वानों! एकाग्र मन से विचारपूर्वक पूछो कि इस सृष्टि का रचने वाला कौन है और सकल ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला कौन है?

एक दार्शनिक और वैज्ञानिक के समान, वेद सृष्टि की मीमांसा करना चाहता है और चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मन में उठने वाली जिज्ञासा को भली प्रकार शान्त करने का मार्ग भी जान ले।

तीन कारणों को "केशिन:" कह कर एक स्थान पर वर्णन किया गया है। यथा-

त्रय: केशिन: ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभिचष्टे शचीभि: ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम्।।
ऋ० १।१६४।४४

तीन प्रकाशमय पदार्थ नियमानुसार विविध प्रकार से अपना ज्ञान करा रहे हैं। एक समयानुसार अपने अन्दर से सृष्टि को उत्पन्न करता है, एक सृष्टि में आकर अपनी शक्तियों से अनेक प्रकार के भोग प्राप्त करता है और एक ऐसा है कि उसका बल पौरुष तो स्पष्ट दिखाई देता है, परन्तु उसका रूपरंग कुछ भी दिखाई नहीं देता।

इस मन्त्र में जिज्ञासु जनों को सृष्टि के तीन कारणों-प्रकृति, जीव और ईश्वर की ओर संकेत करके यह समझाया गया है कि सृष्टि उत्पत्ति के यही तीन कारण हैं।

कारण-सामग्री के लिये यह नियम है कि वह कार्य की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान हो, अत: प्रकृति उपादान कारण के रूप में, ईश्वर निमित्त कारण के रूप में और जीववर्ग साधारण कारण के रूप में सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व ही विद्यमान था।

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व प्रलयावस्था का वर्णन करते हुए जहाँ अन्य अनेक बातों का वर्णन किया गया है, वहाँ सृष्टि की उत्पत्ति की परम आवश्यक कारण सामग्री का भी उल्लेख किया गया है। जो लोग नासदीय सूक्त को पूर्णतया विचार न करके एकत्ववाद का पोषक समझते हों, वे लोग गम्भीरतापूर्वक ध्यान देने की कृपा करें। निम्न मन्त्र नासदीय सूक्त का है और उसमें सृष्टि उत्पत्ति की कारण सामग्री का स्पष्ट वर्णन है। देखिए-

तम आसीत् तमसा गूढमग्रे ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छेनाभ्वपिहितं तदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम्।।१०।१२९।३

उस समय एक परम सूक्ष्म और व्यापक तत्त्व विद्यमान था, जो प्रकेत अर्थात् चैतन्य से सर्वथा शून्य जड़ था। उसमें निरन्तर गति और हलचल भी थी। अधिक क्या, उस समय सारे का सारा आकाश परमाणुसमूह से भरा पड़ा था। उसी परमाणुसमूह से एक एक लोक उत्पन्न हुआ है और हुआ भी परम चैतन्य के तपस् ज्ञानपूर्वक संकल्प से।

यहाँ सूक्ष्म परमाणुसमूह प्रकृति को जड़तत्त्व के रूप में वर्णन करके लोकलोकान्तरों की उत्पत्ति का उपादान कारण बताया गया है। इसके साथ ही "तपस: तन्महिना" अर्थात् ज्ञानस्वरूप की प्रसिद्ध महिमा से ही ऐसा हो सका-यह कहकर ईश्वर को निमित्त कारण भी कहा गया है।

इसी विषय पर और भी प्रकाश डालते हुए फिर कहा गया है कि-

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामध: स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् स्वधा अधस्तात् प्रयति: परस्तात्।। १०।१२९।५

इन परमाणुओं की गति बड़ी ही विचित्र थी। कोई नीचे को जा रहा था कोई ऊपर को। इनके अतिरिक्त जीववर्ग भी थे-कुछ तो रेतोधा अर्थात् फलभोग की वासनारूप बीज को धारण करने वाले थे और कुछ एक महिमा-महान् अर्थात् मुक्त जीव भी थे, जो मोक्ष के आनन्द में मग्न थे। स्वधा अर्थात् प्रकृति दबी हुई थी और प्रयति अर्थात् प्रयत्नस्वरूप परमेश्वर का अस्तित्व सर्वोपरि विराजमान था।

मन्त्र कहता है कि जब जगत् की उत्पत्ति होने लगी, उस समय परमाणुसमूह प्रकृति में विचित्र क्रियायें और गतियां होने लगीं, क्योंकि जड़ प्रकृति, परमेश्वर की इच्छानुसार कार्य करने के लिये विवश हो चुकी थी और इसीलिये वह स्वधा अर्थात् परमेश्वर के द्वारा अच्छी प्रकार से नियन्त्रण में आ चुकी थी। प्रकृति को जगत् की उत्पत्ति की ओर प्रबल वेग से परमेश्वर ने इसलिये प्रेरित किया कि अनेकों जीव स्वकृत कर्मों का फल भोगने के लिये उत्सुक थे और कई एक मोक्षप्राप्ति की उत्कट अभिलाषा कर रहे थे। महर्षि पतञ्जलि के यौगिक शब्दों में-'भोगापवर्गार्थं दृश्यम्' अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति का प्रयोजन केवल जीवों को कर्मफल प्रदान तथा मोक्ष के लिये उत्साहित करना है।

अभी तक हमने यह बताया कि सृष्टि की उत्पत्ति बिना कारण नहीं हुई; किन्तु उसके तीन कारण हैं-प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति हुई है, परमेश्वर ने अपने अतुलनीय तपस् से जगत् को उत्पन्न किया है और उत्पन्न भी इसलिये किया है कि जीवगण स्वकृत कर्मों का फल भोगें और मोक्ष के लिये प्रयत्नशील हों।

सृष्टि प्रवाह से अनादि है

हमारी इस वर्तमान सृष्टि से पूर्व भी सृष्टि थी और उससे पूर्व भी सृष्टि थी। इसीलिये पिछली सृष्टि के प्रलयकाल के उपस्थित होने पर जीवों के कर्म बिना फल के रह जाते हैं। उन कर्मों का फल भुगताने और मोक्ष की प्रेरणा देने के लिये फिर सृष्टि की उत्पत्ति करनी पड़ती है। जैसा कि पाठशाला या कार्यालय में अवकाश हो जाने पर विद्यार्थी और कर्मचारी विश्राम करते हैं, तथा विद्यालय और कार्यालय खुलने पर पुन: अपना अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। वैसे ही पिछली सृष्टि के जीव अपना कर्मफल भोगने के लिये नई सृष्टि में जन्म लेकर अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं। यही विचार अद्वितीय तार्किक श्री उदयनाचार्य ने न्यायकुसुमाञ्जलि में व्यक्त किये हैं। उनका कथन है कि-

प्रवाहो नादिमानेष न विजात्येकशक्तिमान्।
तत्त्वे यत्नवता भाव्यमन्वयव्यतिरेकयो:।।

इस जगत् के प्रवाह का कहीं आदि नहीं है और न ही यह जगत् पहली बार उत्पन्न हुआ है। प्रत्येक जिज्ञासु को तत्त्व के यथार्थ ज्ञान के लिये अन्वय और व्यतिरेक पर विचार करना चाहिये। अर्थात् जैसे बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता और होता है तो कारण से ही होता है, वैसे ही इस सृष्टि की उत्पत्ति का कोई कारण होना चाहिये और वह पहली सृष्टि है। इसीलिये पहली सृष्टि से पूर्व भी कोई और सृष्टि हुई होनी चाहिये और उससे पूर्व कोई और, तथा उससे भी पूर्व कोई और होनी चाहिये; क्योंकि यदि पहले नहीं थी,

(शेष पृष्ठ 7 पर)

वेदों के ऋषि

ले.-श्री पं० रामावतार जी तीर्थचतुष्टय

(गतांक से आगे)

प्रपूतास्मिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये। भरस्व सुम्नयुर्गिरः। ऋ० १।७९।१०।

हे गोतम यदि तू धन चाहता है, तो पवित्र वाणियों से अग्नि की स्तुति कर।

इस मन्त्र में विचारना यह है कि इस सूक्त के अन्दर १२ मन्त्र हैं, जिनका ऋषि गोतम है। दशवें मन्त्र में गोतम शब्द सम्बोधन के रूप में प्रयुक्त हुआ है। ऐसी अवस्था में गोतम तो स्वयं स्तुति कर ही रहा है, पुनः अपने आप को सम्बोधन कर कहना कि "तू स्तुति कर" ऐसी उक्ति अयुक्त है। किसी अन्य के प्रति ऐसा कहना युक्तियुक्त होता है। अतः सूक्त के ऋषि रहूगण के पुत्र गोतम का मन्त्रगत भिन्न अर्थ वाले गोतम के लिये ऐसा सम्बोधन करना उचित हो सकता है।

भरद्वाज ऋषि के विचार के प्रसंग में हम कह चुके हैं कि सूक्त का ऋषि भरद्वाज और है तथा मन्त्रों का भरद्वाज भिन्न है। ऐसे ही सूक्त का ऋषि गोतम भिन्न है और मन्त्रगत गोतम अन्य है।

एक अन्य स्थल में गोतम शब्द तृतीय विभक्ति के बहुवचन के रूप में प्रयुक्त हुआ है। तथा

एवाग्ने गोतमेभिर्ऋक्वा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः।

ऋ. १।७७।५

हे अग्नेः अप्रतिहत गति वाले विप्रों ने तेरी स्तुति की। यह मन्त्र प्रथम मंडल का है किन्तु अष्टम मंडल में इस पद का अर्थ "गन्तृतमैः" ऐसा किया गया है। जिसका अर्थ अतिशय गतिशील होता है।

इस मन्त्र में "गोतमेभिः" और "विप्रेभिः" ये दो पद एक साथ प्रयुक्त हुए हैं। दोनों पद परस्पर विशेष्य और विशेषण दोनों हो सकते हैं। विप्र पद का मेधावी अर्थ होता है। गोतम पद का अत्यन्त गतिशील अर्थ होगा। इसलिये दोनों पदों के दोनों ही प्रकारों से अर्थ हो सकते हैं। जैसे अप्रतिहत गति वाले मेधावी पुरुषों ने तेरी स्तुति की, अथवा मेधादायिनी बुद्धि वाले प्रगतिशील पुरुषों ने तेरी स्तुति की। यों भी गोतम पद के विशेषण होने में कोई अयुक्तता प्रतीत नहीं होती।

गम् धातु से गौ शब्द की सिद्धि होती है। उसका गति अर्थ होता है। गम् धातु से "डो" प्रत्यय होकर "गो" पद बन जाता है। गो-पद के आगे तमप् प्रत्यय का योग होने से "गोतम" बन जाता है। "अतिशयेन गौः गोतमः" अत्यन्त गतिशील, महान् ज्ञानी, अतिशय मुक्ति चाहने वाला, आदि अनेक अर्थ होते हैं।

गौ शब्द भी अनेकार्थक है। गाय, बैल, वाणी, मेघ का गर्जन, गौओ का दान करने वाला, स्तुति, सूर्य और पृथिवी इत्यादि अर्थ व्यवहार में आ चुके हैं। गो शब्द से ही "गो" पद बन जाता है। वस्तुतः गो शब्द ही शुद्ध रूप का होता है। गो शब्द व्याकरण के नियम से उदात्त है। इसलिये उससे तमप् प्रत्यय होता है, वह अनुदात्त है। उदात्त के उत्तर का अनुदात्त स्वरित होता है। अब गोतम पद आद्युदात्त है उसका शुद्ध रूप ऐसा होता है-गोतमः।

गोतम शब्द का अनेक स्थानों में "गोतमासः" ऐसा प्रयोग भी मिलता है। व्याकरण के नियम से यह प्रयोग बनता है। इस पद का अर्थ अनेक गोतम होता है।

संज्ञा वाचक पदों से यह प्रत्यय नहीं देखा जाता है। जैसे-पूतासः। ओमासः। देवासः। अदब्धासः। अपरीतासः आदि पद होते हैं ऐसे ही "गोतमासः" यह पद भी देखा जाता है। इन सम्पूर्ण पदों की समता में कुछ भी भेद नहीं दीखता। इसके साथ साथ जितने पद वेद मन्त्रों में असुक् प्रत्यय वाले दीखते हैं, वे किसी व्यक्ति विशेष का अर्थ नहीं करते। इसलिये कोई कारण नहीं कि वेद मन्त्रों में "गोतम" पद का व्यक्ति विशेष अर्थ किया जाए। गोतम पद के अर्थों का यदि संग्रह कर दिया जाए तो निम्नलिखित अर्थ इस पद के होंगे।

१. गोतम-अत्यन्त गतिशील सूर्य की किरणें।

२. गोतम-महान् ज्ञानी।

३. गोतम-अनेक सूर्यों में एक।

४. गोतम-अनेक वाणियों में एक।

५. गोतम-तीव्रगति वाली पृथिवी।

६. गोतम-अनेक गौओं को दान करने वालों में एक।

७. गोतम-बड़ा बैल।

८. गोतम-बड़ी गाय।

९. गोतम-अनेक स्तुतियों में एक।

१०. गोतम-रहूगण का पुत्र ऋषि।

११. गोतम-तारा।

उपर्युक्त अर्थों की दृष्टि से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वेद की शैली के अनुसार वेद मन्त्रों में आये हुए गोतम शब्द का गोतम ऋषि से कोई सम्बन्ध नहीं है। हाँ ऐसी सम्भावना अवश्यमेव की जा सकती है कि इन पूर्वोक्त अर्थों को ध्यान में रखते हुए ही किसी विशेष अर्थ के विचार से गोतम नाम पीछे रक्खा गया हो। जिसकी आज प्रसिद्धि हो गई हो।

काल भेद से एक ही शब्द का दूसरा अर्थ हो जाया करता है। उदाहरण के लिये "पत्र" शब्द को ही ले लीजिये। पत्र शब्द का बहुत पहले 'पत्ता' अर्थ होता था किन्तु आज तत्सम मान कर चिट्ठी और समाचार पत्र आदि अनेक अर्थों में वह प्रयुक्त होने लग गया है।

ऐतिहासिकों की गृध्रदृष्टि होती है। उनको बहुत दूर की सूझती है, क्या ठिकाना! कहीं ऋग्वेद के निम्न मन्त्र पर उनकी आँखें गड़ जाए तो डा. राजेन्द्रप्रसाद की प्रशंसा पर इसका अर्थ कर डालें तथा ऐसा भी कह दें कि उसी समय का यह मन्त्र है जिस समय राजेन्द्र बाबू भारत सरकार के खाद्य मन्त्री थे। वह मन्त्र वह है-

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नुन् पाह्यसुर त्वमस्मान्।

त्वं सत्पतिर्मंधवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहौदाः।।

ऋ० १।१७४।१

अर्थः-(राजेन्द्र) हे बाबू राजेन्द्र प्रसाद (त्वम्) तू और (ये च देवाः) जो अन्य नेता गण हैं (असुर) हे प्राण दाता अन्न का प्रबन्ध कर प्राणों की रक्षा करने वाले (त्वम्) तू (अस्मान् नृन्) हम मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कर (त्वम्) तू (सत्पतिः) एकत्रित तथा विद्यमान अन्नों का स्वामी है, इसलिये (मघवा) (तू) धनवान है। तू (नः) हमको (तरुतो) प्राण बचाकर तारने वाला है। (त्वम्) तू (सत्यः) अपने कर्त्तव्य के लिये सच्चा है तू (वसवानः) अपनी शक्ति से हमें बसाने वाला है तू (सहोदाः) अन्न देने के कारण बल का दाता है।

सरल हिन्दी।

हे बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी! आप तथा अन्य नेता गण सब लोग मिल कर अन्न देकर हम लोगों की रक्षा करने वाले हैं। तू ही विद्यमान अन्नों का स्वामी है इसलिये धनवान् है। तू हमें अन्न के कष्ट से तारने वाला है। तेरी सच्चाई पर हमको सन्देह नहीं है, तू अंग्रेजों को हटाकर हमें बसाने वाला है। तू अन्नदाता है इसलिये बलदाता है।

इस मन्त्र के अर्थ की संगति में न्यूनता नहीं है। ऐसी अवस्था में इस मन्त्र का यही अर्थ होने में हानि क्या हो सकती है।

तब इस मन्त्र के निर्माण का काल १९४७ ई० के आस पास का कहने में संकोच क्या हो सकता?

फिर आज भी गोतमों की न्यूनता नहीं है। ऐसे हो कभी भी गोतम नहीं थे यह कैसे कहा जा सकता है। जब धर्मशास्त्र कहते हैं कि वेद के शब्दों को सुन तथा देखकर नामों और कामों की व्यवस्था होती है। तब मन्त्रगत गोतम आदि पर व्यक्ति विशेष अथवा ऋषि विशेष के वाचक नहीं हो सकते। गोतम शब्द पर इतना विचार पर्याप्त है कि यह पद यौगिक अर्थ करता है।

आगे अत्रि शब्द को उपस्थित कर उस पर विचार किया जायेगा।

४. अत्रिः

सबसे प्रथम निरुक्तकार आचार्य यास्क का अभिमत देखने योग्य है वह इस प्रकार है-न त्रय इति। नि० ३।१५ जिसमें तीन तापों का सर्वथा अभाव हो वह अत्रि होता है।

अत्रि शब्द की दूसरी व्युत्पति भी मिलती है जिसने उस शब्द के अर्थ पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। जैसे

"मातृपित्रात्मसम्बन्धिनस्त्रिविधा दोषा न सन्त्यस्मिन्निति-अत्रिः"

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पृष्ठ 5 का शेष-वेदों के ऋषि

माता, पिता और अपने व्यापार से होने वाले इन तीन प्रकार के दोषों का जिसमें अभाव हो वह अत्रि होता है। अर्थात् जिसमें अपना व्यापार कोई ऐसा नहीं कि जिससे देहिक दैविक और भौतिक तापों का सम्पर्क हो, तथा मातृ-पितृ जन्य दोषों का भी सर्वथा अभाव जिसमें हो, वही अत्रि कहा जा सकता है।

आगे अथर्ववेद का एक मन्त्र उपस्थित किया जाता है जिसमें अत्रि का वर्णन पाया जाता है। स्मरण रहे कि इस सूक्त का ''ब्रह्मा'' ऋषि है और अध्यात्म देवता है। यथा:

अयं स देवो अप्त्वन्तः सहस्त्रमूलः पुरुशाको अत्रिः।
य इदं विश्व भुवनं जजान।।
अथर्व० १३।३।१५

अर्थात्-जिसने इस सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न किया है, असंख्य वस्तुओं का मूल कारण है, जो परिपूर्ण शक्तियों से सम्पन्न है, और जो पञ्च भूतों में व्यापक है, वही यह देव ''आत्र'' है।

इस मन्त्र में अत्रि के जितने गुणों का वर्णन किया गया है, उससे मुख्य रूप से अत्रि का सृष्टिकर्ता देव परमेश्वर अर्थ सिद्ध होता है। गौण रूप से अन्य नाम भी तत्सम के समान रखे जा सकते हैं। जैसा कि सदा से लोग करते आये हैं और आज भी करते हैं।

ऋग्वेद के प्रमाण से अत्रि शब्द का अग्नि अर्थ होता है। यथा-

तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये। ऋ० १।११२।७ ''यास्कपक्षे त्वत्रये हविषामत्तेऽग्नये हविरुत्पत्त्यर्थम् सूर्यकिरणसन्तप्तं धर्मं नैदाघमहः-ओम्यावन्तम् तृप्तिहेतु वृष्टि-उदकोपेतम्'' इति सायणः।

इस मन्त्र में आये हुए अत्रि पद का अर्थ आचार्य सायण ने यास्क पक्ष का समर्थन करते हुए अग्नि किया है। ''अद् भक्षणे'' इस धातु से अत्रि पद की उत्पत्ति, आचार्य यास्क का अभिमत है। इसलिये ''हविष्य का भक्षण करने वाली अग्नि के लिये'' ऐसा अर्थ किया गया है। वेद के सम्बन्ध में आचार्य यास्क का प्रामाण्य सर्वतोऽधिक है।

हमारी समझ से अत्रि पद पर पर्याप्त प्रकाश दिया जा चुका है, अभी इस विचार से अधिक की आवश्यकता नहीं है। यह बात सिद्ध हो गई कि अत्रि पद का यौगिक अर्थ मुख्य रूप से होता है। कालक्रम से ऐसे नाम पीछे से रखे जाने लग गये होंगे। अतएव अत्रि पद के निम्न अर्थ होने चाहिये।

१. अत्रिः तीन तापों से शून्य।
२. अत्रिः तीन दोषों से रहित।
३. तीन गुणों के अभाव वाला।
४. अत्रिः त्रिकालाबाधित।
५. अत्रिः अग्नि।
६. अत्रिः भुम का पुत्र ऋषि।

इस प्रसंग में यह स्मरण रखने की बात है कि भुमपुत्र अत्रि का मन्त्रगत अत्रि से कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु यह सम्भव है कि अत्रि=अग्नि विद्या का विशेष रूप से प्रकाशक होने के कारण से ही नाम भी अत्रि हो गया हो। अथवा ''अग्निर्माणवकः'' के समान व्यवहार में आकर उस व्यक्ति का नाम ही वही हो गया हो।

अब आगे जमदग्नि पद पर विचार उपस्थित किया जाता है।

५. जमदग्निः

सबसे प्रथम यजुर्वेद का एक प्रमाण उपस्थित किया जाता है जिससे ''जमदग्नि'' पद के अर्थ पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

जमदग्निर्ऋषिः प्रजापति-गृहीतया त्वया चक्षुर्गृहणामि प्रजाभ्यः। य० ।१३।५६

भावार्थ-इस मंत्र के केवल जमदग्नि पद से जो शिक्षा मिलती है उतनी ही ग्राह्य है। जमदग्नि शब्द में दो पद हैं। जमत्+अग्नि= जमति-जगत् पश्यति इति जमन्। जो संसार को देखता है वह जमत् है। अङ्गति सर्वत्र गच्छति इति अग्निः। जो सब ओर जाता है वह अग्नि है। इन दोनों पदों का सम्मिलित अर्थ निम्न प्रकार से होगा। जो सब तरफ जाकर संसार को देखे, वह जमदग्नि है। यद्यपि गत्यर्थक धातुओं को अनेकार्थक माना जाता है किन्तु यहाँ एक ही अर्थ का उपयोग किया गया है। इस पद के साथ ही ऋषि पद का योग है। ऋषि पद का अर्थ भी भाव पूर्ण है। ऋषति जानातीति ऋषिः। जिसको ज्ञान होता है वह ऋषि है। केवल ''जमदग्नि ऋषि'' पद का यह यौगिक अर्थ हुआ।

अब प्रश्न यह होगा कि वह क्या है। मन्त्र का उत्तर है कि ''चक्षुर्गृह्णामि'' अर्थात् वह आँख है। इस मन्त्र से जमदग्नि ऋषि आंख सिद्ध होती है।

उपपत्ति-भाष्यकार ने आंख के जमदग्नि होने में जो प्रमाण दिया है वह निम्न प्रकार है। **''चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः-यदनेन जगत् पश्यति अथो मनुते तस्माच्च-क्षुर्जमदग्निर्ऋषिः''।**

अर्थात् आंख ही जमदग्नि ऋषि है क्योंकि इसी से संसार को देखता है तब देखकर समझता है।

जमदग्नि पद का और भी विश्लेषण मिलता है, वह यह है-'जयन्तः प्रज्वलन्तः अग्नयो यस्यासौ जमदग्निः। अर्थात् जिसकी आग कभी नहीं बुझे वह जमदग्नि होता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि जो आहिताग्नि हो वही जमदग्नि होता है। या यों कहना चाहिये कि आहिताग्नि, जमदग्नि होता है।

आहिताग्नि का अर्थ यह होता है कि-जिसने प्रतिज्ञा करके अग्नि होत्र की अग्नि को सदा प्रज्वलित रखा हो। आजकल के आहिताग्नि, आहवनीय अग्नि के समीप ही बैठे रहते हैं। उनका बाह्य व्यापार बन्द रहता है। यह नाम भी यही अर्थ करता है कि किसी भी व्यक्ति का यह नाम हो सकता है किन्तु उसको आहिताग्नि होना चाहिये।

अब आगे हम ऋग्वेद का एक मन्त्र उपस्थित करते हैं जिससे यह अर्थ और भी स्पष्ट हो जाता है। यथा-

बृहन् मिमाय जमदग्निदत्ता।
ऋ० ३।५३।१५

इस मन्त्र में ''जमदग्निदत्ता'' यह एक पद है। इसका यह अर्थ है कि प्रज्वलताग्निभिः दत्ताः अर्थात् अग्नि को सदा प्रज्वलित रखने वालों के द्वारा दी गई''

इस मन्त्र के इतने भाग से भी वही अर्थ सिद्ध होता है, जो पहले आ चुका है।

''ऋग्वेद'' के एक अन्य मन्त्र से भी उसी अर्थ का अनुमोदन होता है। यथा-

यां मे पलस्ति जमदग्नयो ददुः।
ऋ० ३।५३।१६

इस मन्त्र में ''पलस्ति जमदग्नयेः'' यह पद मिलता है। इसमें दो पदों का मेल है। जैसे-पलस्ति+जमदग्नि। फलस्तयश्च ते जमदग्नयश्च ते। अर्थात् बाल पके हुए आहिताग्नि जन जमदग्नि कहे जाते हैं।

इस मन्त्र के भाग से यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि यह पद गुणवाचक होने के कारण किसी व्यक्ति विशेष का अर्थ नहीं करता है।

उपर्युक्त विचारों से जमदग्नि पद का अनेक अर्थ सिद्ध होता है।

इस पद के संगृहीत अर्थ निम्न हुए-

१. जमदग्नि-आंख।
२. जमदग्नि-आहिताग्नि।
३. जमदग्नि-भृगु के अनेक पुत्रों में से एक।

यहां यह स्मरणीय है कि वैदिक सम्प्रदाय में यह पद अनेक अर्थों का वाचक व्यवहार में आ चुका है, अतः मन्त्र गत जमदग्नि का भृगु पुत्र जमदग्नि से कोई सम्बन्ध नहीं है। हठात् सम्बन्ध जोड़ने पर इतना कह देना पर्याप्त होना कि मन्त्र गत इस पद को देखकर तत्सम संज्ञा रखी गई होगी। आज भी ऐसा देखा जाता है कि जिस साल में भारत स्वतन्त्र हुआ था, उस वर्ष में उत्पन्न होने वाले अनेक बच्चों के नाम ''स्वराज्य'' ''आजाद'' अथवा ''विजय'' आदि रखे गये थे। इस समय एक लड़के का नाम उसके पिता ने ''सर्वोदय'' रखा है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि ये व्यक्ति पहले थे और उनके नामों का ही व्याख्यान ''सर्वोदय'' आदि रचनात्मक काम है। आगे वसिष्ठ शब्द के सम्बन्ध में विचार होगा।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

पृष्ठ 4 का शेष-वैदिक सृष्टि उत्पत्ति की विशेषता

तो यह सृष्टि कैसे हो गई और यदि उससे भी पूर्व नहीं थी तो वह कैसे हो गई-इस प्रकार अन्वय और व्यतिरेक पूर्वक विचार करने से यही सिद्ध होता है कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है।

वेद ने भी तर्कसम्मत इस सिद्धान्त को खुले शब्दों में स्वीकार करते हुए घोषणा की है कि-

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा-पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।।

समस्त ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले परमेश्वर ने सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के नक्षत्रों की ठीक उसी प्रकार से रचना की है, जैसी इस सृष्टि से पूर्व की थी।

वैदिक सृष्टि उत्पत्ति के उपर्युक्त तीनों सिद्धान्त जहाँ तर्कसम्मत और युक्तियुक्त हैं, वहाँ अन्य विचारधाराओं से सर्वथा श्रेष्ठ भी हैं। अत एव प्रत्येक विचारशील की जिज्ञासा को पूर्ण करने की अद्भुत शक्ति भी रखते हैं। इसके विरुद्ध ईसाई और मुसलमानों की पुस्तकों बाईबिल और कुरान का वर्णन कुछ और ही प्रकार का है।

कुरान के विचार

मुसलमान लोग अपनी पुस्तकों के आधार पर सृष्टि को न तो प्रवाह से अनादि मानते हैं और न ही जीव और प्रकृति को अनादि मानते हैं। इस प्रकार वे लोग सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व कारण सामग्री का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उनका सिद्धान्त है कि खुदा सब कुछ कर सकता है-जीव और प्रकृति के बिना ही अपनी शक्ति मात्र के जगत् उत्पन्न करने का सामर्थ्य रखता है। कुरान में कहा भी है कि-

वहुवल्लजी ख़लक़स्समावाति वल् अर्ज़ बिल् हक्कि व यौम यक़ूल, कुन् फ़यक़ून। सूरत ६ आयत ७३।

खुदा वही है जिसने आसमानों को और ज़मीनों को पैदा किया, सच यह है कि जब वह कहता है कि हो जा तो वह हो जाता है।

व लिल्लाहि मुल्कुस्समावाति वल् अर्ज़ि वल्लाहु अला कुल्लि शैयन् क़दीर। सू० ३ आयत १८१।

अल्लाह का आसमानों पर और ज़मीन पर पूरा अधिकार है, यह सच है कि अल्लाह हर चीज़ पर कर सकने का सामर्थ्य रखता है।

सारे कुरान में इससे अतिरिक्त सृष्टि उत्पत्ति के विषय में कुछ नहीं पाया जाता। इसी आधार पर मुसलमानों का सिद्धान्त है कि खुदा ने जगत् को बिना कारणसामग्री के ही बनाया और बना सका, इसलिये कि वह सब कुछ कर सकता है। इसीलिये वह अभाव से भाव उत्पन्न कर देता है।

यदि यही बात है कि कारण सामग्री की अपेक्षा बिना ही जगत् उत्पन्न हुआ है और हो सकता है, तो इसमें दृष्टिविरोध क्यों है? आज भी खुदा को वर्षा करनी होती, है तो वह समुद्र से बादल पैदा करता है। और अनाज पैदा करना होता है, तो भूमि पर ही करता है। जलना होता है, तो अग्नि से ही जलाता है। अधिक क्या, जो कोई कार्य करना होता है, उसकी कारण सामग्री को लेकर ही करता है। यदि वह बिना कारण सामग्री के ही कार्य उत्पन्न कर सकने में स्वतन्त्र होता, तो आज वर्तमान काल में भी अभाव से भाव उत्पन्न कर देता; परन्तु ऐसा कहीं नहीं है-सारे ब्रह्माण्ड में नहीं है। अतः यह बात तो सर्वथा विज्ञान विरुद्ध है।

यदि सर्वशक्तिमान् या कादिरे मुतलिक का यही अर्थ है, तो फ़िर यह प्रश्न भी होना चाहिये कि खुदा अपने को नष्ट भी कर सकता है या नहीं। एक बात और भी है-खुदा जब ज़मीन आसमान को पैदा करने लगता है तो कहता है कि हो जा, बस वह हो जाता है-इस पर विचार उठता है कि उत्पत्ति से पूर्व खुदा से भिन्न जीव और प्रकृति तो थे नहीं, फिर यह वचन "कि हो जा" किससे कहा और वह कौन था, जिसने खुदा के इस वचन को सुना तथा सुनकर बस वह हो गया। यह आज्ञासूचक क्रिया ही संकेत कर रही है कि खुदा से अतिरिक्त कोई कारण सामग्री वहां अवश्यमेव थी। यदि नहीं थी तो निश्चय से यह वचन प्रमत्तगीतवत् उपेक्षणीय है।

बाइबिल के विचार

In the begining God created the heaven and the earth. And the earth was waste and void; and darkness was upon the face of the deep: and the spirit of God moved upon the face of the waters. And God said, let there be light: and there was light. Genesis 1,1-3.

"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को उत्पन्न किया, और पृथिवि वेडौल और सूनी थी और गहराव पर अंधेरा था और ईश्वर का आत्मा पानी के ऊपर डोलता था। और ईश्वर ने कहा प्रकाश हो जावे और प्रकाश हो गया"

बाईबिल के उपर्युक्त उद्धरण से भी यही प्रतीत होता है कि ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को बिना किसी उपादान कारण के ही उत्पन्न किया है और जब वह किसी की उत्पत्ति चाहता है तो कह देता है कि 'हो जा' बस वह हो जाती है। जैसे आकाश और पृथिवी को उत्पन्न करने पर जब उसने देखा कि चारों ओर अंधकार का ही साम्राज्य छाया है तो उसने कहा कि-प्रकाश हो जाये। बस कहने या संकल्प की देर थी, तुरन्त प्रकाश हो गया। परन्तु प्रकाश कहाँ से आ गया और किस कारण से उत्पन्न हो गया-इस बात पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता।

अत एव बाईबिल के सिद्धान्त पर भी वे सब आक्षेप उपस्थित होते हैं, जो कुरान के वाक्यों पर हो सकते हैं। क्योंकि मुसलमानों के समान ईसाई भी जीव और प्रकृति को अनादि नहीं मानते और इसीलिये केवल ईश्वर-कारण सामग्री से शून्य ईश्वर से-जगत् की उत्पत्ति मानते हैं।

वेद की विशेषता

वेद की यह विशेषता है कि वह प्रत्येक कारण की खोज करता है और खोज करने की प्रेरणा भी करता है। महा मुनि कणाद के इन शब्दों में इसीलिये महान् सत्य का आभास दिखाई देता है कि-**बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे।** वैशेषिक दर्शन। अर्थात् वेद की वाक्यरचना बुद्धिपूर्वक है। अभाव से भाव की उत्पत्ति जैसे सिद्धान्त को मनुष्य का परिष्कृत मस्तिष्क कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। याज्ञवाल्क्य के रूप में वह तो चैलेञ्ज देकर कहेगा-**कथमसतः सज्जायेत** अर्थात् अभाव से भाव कैसे उत्पन्न हो सकता है? और श्री कृष्ण जी तो स्पष्ट ही कर गये है कि-**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।** इसीलिये अन्य मतों की अपेक्षा वैदिक धर्म ईश्वर को सदा सम्पन्न अर्थात् नित्य वस्तुओं का सदा स्वामी मानता है। नासदीय सूक्त के मन्त्रों से हमने सिद्ध किया था कि सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व ईश्वर विराजमान था और उसके साथ जीवगण और प्रकृति (परमाणु समूह) भी विद्यमान थी। इसके साथ ही विषय को विस्पष्ट करते हुए हम यह भी निवेदन कर देना चाहते हैं कि यजुर्वेद में भी इस आवश्यक तत्त्व पर विचार किया गया है। जैसा कि-

याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः। यजुः ४०।७

पदार्थों को याथातथ्य रूप से और याथातथ्य रूप में विशेषतापूर्वक रचा और स्वामी परमेश्वर ने अपनी नित्य सनातन प्रजाओं (जीवों) के लिये। इसमें प्रकृति और जीवों को सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व परमेश्वर के साथ विद्यमान कहा गया है। इसके साथ ही यदि यजुर्वेद के ३२।५ का ध्यानपूर्वक मनन किया जावे तो-**प्रजापतिः प्रजया संरराणाः** प्रजापति परमेश्वर को अपनी प्रजा (जीव और प्रकृति) के साथ सदा रमते हुए मानना पड़ता है।

सृष्टि उत्पत्ति का क्रम

ऋग्वेद की समाप्ति पर अघमर्षण सूक्त आता है। इस सूक्त में सृष्टि के उत्पत्तिक्रम पर सूक्ष्मतया विचार किया गया है। परमेश्वर ने जब सृष्टि को उत्पन्न करने का संकल्प किया और कारणसामग्री का समीक्षण किया तो सबसे पहले दो नियम सामने आये, वे नियम ऋत और सत्य थे-अर्थात् लौकिक और आत्मिक। जिस प्रकार कोई कुशल कलाकार कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व उसका विचारपूर्वक मनन करता और कार्यक्रम निर्धारित करता है, ठीक उसी प्रकार परमेश्वर ने भी लोक लोकान्तर बनाने के, उनके आकर्षण प्रत्याकर्षण के, उनके जीवोपयोगी होने के नियम पहिले बनाये और इसके साथ ही जीवों को कर्मफल देने तथा पृथक् पृथक् कर्मों में प्रवृत्त कराने के अनेक प्रकार की योनियों के नियम भी बनाये। मन्त्र कहता है-

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। (क्रमशः)

जिला आर्य सभा लुधियाना द्वारा ऋषि बोधोत्सव धूमधाम से मनाया

जिला आर्य सभा लुधियाना एवं लुधियाना की समस्त आर्य समाजों की तरफ से डुमरा हाल, हीरो डी.एम.सी.अस्पताल में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की द्वितीय जन्म शताब्दी के शुभारम्भ पर 2 वर्षों तक चलने वाले समारोहों की श्रृंखला के रूप में जिला आर्य सभा लुधियाना की तरफ से ऋषि बोधोत्सव धूमधाम से मनाया गया। जिसकी अध्यक्षता आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने की। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी एवं दयानन्द मैडीकल कालेज एवं अस्पताल के सैक्रेटरी श्री प्रेम गुप्ता जी ज्योति प्रज्वलित कर कार्यक्रम का शुभारम्भ करते हुये। उनके साथ खड़े हैं आर्य विद्या परिषद पंजाब के रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट, जिला आर्य सभा लुधियाना की प्रधाना श्रीमती राजेश शर्मा जी, श्री रणवीर शर्मा जी एवं अन्य। जबकि चित्र दो में पुस्तक का विमोचन करते हुये। चित्र तीन में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी आर्य जनता को सम्बोधित करते हुये। नीचे चित्र में सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गुलशन शर्मा जी कार्यक्रम में हिस्सा लेते हुये। मध्य में गणमान्य महानुभाव संयुक्त चित्र खिंचवाते हुये जबकि अन्त में उपस्थित आर्यजन।

जिला आर्य सभा एवं लुधियाना की समस्त आर्य समाजों की तरफ से डुमरा हाल, हीरो डी. एम. सी.अस्पताल में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की द्वितीय जन्म शताब्दी के शुभारम्भ पर 2 वर्षों तक चलने वाले समारोहों की श्रृंखला के रूप में जिला आर्य सभा लुधियाना की तरफ से ऋषि बोधोत्सव धूमधाम से मनाया गया। जिसकी अध्यक्षता आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने की। विशेष अतिथि के रूप में दयानन्द मैडीकल कालेज एवं अस्पताल के सैक्रेटरी श्री प्रेम गुप्ता जी व श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद पंजाब उपस्थित रहे। यह सारा कार्यक्रम जिला आर्य सभा लुधियाना की अध्यक्षा श्रीमती राजेश शर्मा एवं लुधियाना की समस्त आर्य समाजों के अधिकारियों की देख रेख में हुआ। श्री श्रवण बतरा के नेतृत्व में यज्ञ ब्रह्मा श्री विजय शास्त्री जी, श्री अमित शास्त्री जी व श्री राकेश शास्त्री ने पवित्र वेद मंत्रों के साथ यज्ञ सम्पन्न करवाया। इसके उपरान्त अरुण थापर जी ने ध्वजारोहण की रस्म सम्पन्न करवाई। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी एवं श्री प्रेम गुप्ता जी ने ज्योति प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के भजनोपदेशक श्री अरुण विद्यालंकार ने भजनों द्वारा भक्तिरस से उपस्थिति को आत्म विभोर कर दिया। वैदिक प्रवक्ता आचार्य राजू वैज्ञानिक ने अपने प्रवचन में जहां वेदों, यज्ञ व ओ३म की महिमा का विस्तृत रूप से वर्णन किया। वेदों को ईश्वरीय वाणी के रूप में व यज्ञ से वातावरण शुद्धि व ओ३म् के उच्चारण से विभिन्न रोगों से मुक्ति बारे विस्तारपूर्वक बतलाया।

मुख्यातिथि के रूप में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 12 फरवरी को दिल्ली में किये गये सम्बोधन बारे बताया व इन आयोजनों की महत्ता बताई तथा यज्ञ व इससे होने वाले वातावरण पर प्रभावों के बारे में विस्तार से आर्य जनता को बताया। सभा प्रधान जी ने बताया कि प्रधानमंत्री मोदी ने अपने सम्बोधन में कहा कि यह मेरा सौभाग्य है जिस पवित्र धरती पर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने जन्म लिया उस धरती पर मुझे भी जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस मिट्टी से मिले संस्कार, उस मिट्टी से मिली प्रेरणा आज मुझे भी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के आदर्शों के प्रति आकर्षित करती रहती है। उन्होंने बताया कि प्रधानमंत्री जी ने बताया कि इससे बड़ी जीवन की ऊंचाई क्या हो सकती है? जीवन जिस प्रकार से दौड़ रहा है, मृत्यु के दस साल के बाद भी जिन्दा रहना असंभव होता है। दो सौ साल के बावजूद भी आज महर्षि जी हमारे बीच में हैं। सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने कहा कि हमें आर्य समाज के प्रचार प्रसार को बढ़ा कर आम जनता तक अपनी पहुंच बनानी होगी। मंच का संचालन करते हुये जिला आर्य सभा लुधियाना के महामंत्री श्री रणवीर शर्मा जी ने आए हुये सभी आर्य जनों, मुख्य अतिथियों, आचार्य राजू वैज्ञानिक व विशिष्ट अतिथियों का अभिनंदन करते हुये बताया कि आर्य समाज कोई अलग धर्म नहीं है। इसमें सभी धर्मों के अनुयायियों का योगदान है। आर्य समाज केवल समाज में फैली कुरीतियों, पाखंडों व अंधविश्वास का खंडन करने के लिये एक सामाजिक आन्दोलन है। इसमें सभी का योगदान अपेक्षित है। श्री प्रेम गुप्ता के नेतृत्व में दयानन्द मैडीकल कालेज एवं अस्पताल उन्नति के नये शिखर छू रहा है। प्रेम गुप्ता जी ने महर्षि के जीवन पर प्रकाश डाला व आर्य समाज द्वारा किये जा रहे कार्यों की प्रशंसा की। अंत में श्रीमती राजेश शर्मा जी ने सभी का धन्यवाद किया व सभी उपस्थित आर्यजनों व आर्य समाजों का आभार प्रकट किया। इस अवसर पर सर्वश्री सुरेश मुंजाल, यशगिरि, अरुण थापर, राजेन्द्र कुमार रायकोट, सुरेन्द्र टंडन, राकेश जैन, हर्ष सचदेवा, रमेश सूद, बैम्बीजी, विक्की आहूजा, रिक्की जिन्दल, विवेक शर्मा, डा. एस.एम.शर्मा, श्रीमती राजेश शर्मा, प्रिंस मेहता, दिनेश बजाज, अश्विनी विंग, रमेश शास्त्री, राजेन्द्रव्रत शास्त्री, मितेश जिन्दल, सिडाना जी, अशोक गुप्ता, पवन मल्होत्रा, अरुण सूद, अजय सूद, गौरव सरीन, राकेश मेहता, नरेश शर्मा, नितिन महाजन, जनक भगत, सुमित टंडन, विकास बत्तरा, राजेन्द्र बत्तरा, सुनील शर्मा, जसदेव सेखों, अश्विनी सहोता, संत आर्य, डा. विश्व मोहन के नेतृत्व में अन्य डाक्टर महोदय, राकेश आत्म प्रकाश, अम्बरेश, जय प्रकाश, बी.एन. जोशी, श्रीमती सविता शर्मा, विभा, अनु शर्मा, सूक्ष्म आहलूवालिया, किरण टंडन, किरण प्रभा, चीनू, शिवाली शर्मा, रेणु शर्मा आदि मौजूद थे। इसके अतिरिक्त लुधियाना के कई गणमान्य व्यक्ति इस कार्यक्रम में उपस्थित रहे।

रणवीर शर्मा महामंत्री
जिला आर्य सभा लुधियाना

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com,